

आधुनिक शिक्षा की चुनौतियों और विसंगतियों के समाधान में बौद्ध व्यावहारिक दर्शन एवं 'शिक्षात्रय' का एक विश्लेषणात्मक मूल्यांकन

अनीता आर्य¹, शशांक कीर्ति²

¹ असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, कालीचरण पी.जी. कॉलेज लखनऊ विश्वविद्यालय

² शोधार्थी, एम०ए० समाजशास्त्र, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

Email: Shashank.stats@gmail.com



Received 05 June 2026

Accepted 15 June 2026

Published 25 June 2026

Corresponding Author:

अनीता आर्य

Email: Shashank.stats@gmail.com

DOI: <https://doi.org/10.64880/tvsjir.v1i2.04>

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sector.

Copyright: © 2026 The Author(s).



This is an open access article under the [Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License](https://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/).

OPEN ACCESS

सारांश:

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में आधुनिक शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से सूचना-केंद्रित, व्यावसायिक और उपाधि-उन्मुख हो चुकी है, जिसके परिणामस्वरूप समाज में नैतिक मूल्यों का हास, आंतरिक अशांति और तीव्र मानसिक तनाव जैसी विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य प्राचीन बौद्ध दर्शन के दार्शनिक एवं शैक्षिक दृष्टिकोणों की समकालीन प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना है। यह शोध पूर्णतः ऐतिहासिक-दस्तावेजी एवं दार्शनिक शोध विधि पर आधारित है, जिसके अंतर्गत प्राथमिक बौद्ध साहित्यों (त्रिपिटक, जातक ग्रंथ) तथा चीनी यात्रियों (ह्वेनसांग व इत्सिंग) के यात्रा वृत्तांतों की बाह्य एवं आंतरिक आलोचना के माध्यम से साक्ष्यों का विश्लेषण किया गया है। शोध के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि बौद्ध दर्शन का 'मध्यम मार्ग', 'प्रतीत्यसमुत्पाद' और 'शिक्षात्रय' (शील, समाधि, प्रज्ञा) का संप्रत्यय आधुनिक शिक्षा के 'होलिस्टिक लर्निंग' (समग्र अधिगम) और तनाव प्रबंधन के लिए एक वैज्ञानिक ब्लूप्रिंट प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, बौद्ध कालीन विश्वविद्यालयों (नालंदा व तक्षशिला) का बहु-स्तरीय और कौशल-आधारित पाठ्यक्रम समकालीन समावेशी और व्यावसायिक शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने में पूर्णतः सक्षम है।

मुख्य शब्द: बौद्ध दर्शन, शिक्षात्रय, शील-समाधि-प्रज्ञा, प्रतीत्यसमुत्पाद, समकालीन प्रासंगिकता, होलिस्टिक लर्निंग, समावेशी शिक्षा।

प्रस्तावना:

भारतीय चिंतन परंपरा में शिक्षा को केवल जीविकोपार्जन या सूचनाओं के संग्रहण का साधन नहीं, अपितु मानव के आत्मिक, नैतिक और बौद्धिक उत्थान का मार्ग माना गया है। समकालीन युग में विज्ञान और तकनीक ने हमें भौतिक समृद्धि के शिखर पर तो पहुँचा दिया है, परंतु हमारी आधुनिक शिक्षा प्रणाली

छात्र के अंतर्मन को संस्कारित करने और मानवीय संवेदनाओं को जगाने में विफल सिद्ध हो रही है। आज के विद्यार्थी अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, स्वार्थपरता और नैतिक शून्यता के दौर से गुजर रहे हैं। इस पृष्ठभूमि में, बौद्ध शिक्षा दर्शन एक अत्यंत सुदृढ़, व्यावहारिक और यथार्थवादी विकल्प प्रस्तुत करता है। जहाँ आधुनिक प्रणाली सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को अनजाने में बढ़ावा देती है, वहीं प्राचीन बौद्ध शिक्षा व्यवस्था 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के आदर्श पर आधारित थी, जहाँ जाति, वर्ग या लिंग के आधार पर कोई भेद नहीं था। बुद्ध का कालजयी उद्घोष '**अत्त दीपो भव**' (अपना दीपक स्वयं बनो) विद्यार्थी को बाह्य निर्भरता से मुक्त कर आत्म-बोध, आत्म-अनुशासन और बौद्धिक स्वतंत्रता की ओर प्रेरित करता है, जो आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान के 'स्व-अधिगम' का मूल आधार है।

शोध समस्या का कथन एवं औचित्य:

समस्या का कथन: "वर्तमान समय में बौद्ध दर्शन के दार्शनिक और शैक्षिक दृष्टिकोणों की प्रासंगिकता का अध्ययन।" विचारों की व्यावहारिक प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।

औचित्य: वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था काफी हद तक औपनिवेशिक शासन की देन है, जिसके कारण यह हमारी वास्तविक सांस्कृतिक जड़ों और सामाजिक परिवेश से पूर्ण समन्वय नहीं बना पाती। यह शिक्षा 'जीवन की सतत प्रक्रिया' बनने के बजाय केवल 'जीवन की तैयारी' का एक संकीर्ण माध्यम बनकर रह गई है। अतः बौद्ध दर्शन का सर्वांगीण अध्ययन करके उसके व्यावहारिक पक्षों को समकालीन पाठ्यक्रम में एकीकृत करना अनिवार्य हो गया है, ताकि शिक्षा पुनः मनुष्य को 'शीलवान' और 'प्रज्ञावान' बना सके।

शोध के उद्देश्य:

प्रस्तुत शोध पत्र के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. बौद्ध दर्शन के तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा और मूल्यमीमांसा के शैक्षिक पक्षों का संक्षिप्त एवं सारगर्भित विश्लेषण करना।
2. बौद्ध कालीन शिक्षा के मुख्य घटकों (उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि और गुरु-शिष्य संबंध) की कार्यप्रणाली को स्पष्ट करना।
3. बौद्ध काल में स्त्री शिक्षा, सह-शिक्षा के अस्तित्व और तत्कालीन समाज पर इसके प्रगतिशील प्रभावों का मूल्यांकन करना।
4. प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली के नीतिगत और व्यावहारिक सुधार हेतु सार्थक सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध कार्यविधि:

प्रस्तुत शोध में गुणात्मक, दार्शनिक और ऐतिहासिक-वर्णनात्मक शोध विधियों का समन्वय किया गया है:

- **तार्किक एवं निगमनात्मक विधि:** सामान्य दार्शनिक सिद्धांतों से विशिष्ट शैक्षिक समस्याओं की ओर बढ़ने के लिए प्रथम चरण में 'निगमनात्मक तर्क' का सहारा लिया गया है।
- **ऐतिहासिक आलोचना तकनीक:** ऐतिहासिक स्रोतों की सत्यता जाँचने के लिए इसे दो भागों में विभाजित किया गया प्रथम, '**बाह्य आलोचना**' जिसके द्वारा प्राथमिक स्रोतों (त्रिपिटक, जातक ग्रंथ) की प्राचीनता जाँची गई; द्वितीय, '**आंतरिक आलोचना**' जिसके माध्यम से विदेशी यात्रियों के विवरणों के अंतर्निहित अर्थों और लेखकों के दृष्टिकोण का निष्पक्ष विश्लेषण किया गया।
- **दार्शनिक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण:** बौद्ध मत की तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा और मूल्यमीमांसा के शैक्षिक निहितार्थों को स्पष्ट करने के लिए व्याख्यात्मक पद्धति अपनाई गई है।

शोध की सीमाएं:

यह शोध मुख्य रूप से बौद्ध शिक्षा दर्शन और उसकी वर्तमान उपयोगिता तक ही सीमित है। ऐतिहासिक साक्ष्यों हेतु मुख्य रूप से पालि/संस्कृत साहित्य, त्रिपिटक, जातक कथाएं और चीनी यात्री ह्वेनसांग व इत्सिंग के विवरणों को आधार बनाया गया है।

संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन एवं स्रोत:

बौद्ध शिक्षा प्रणाली का काल ई.पू. छठी शताब्दी से लेकर १२वीं शताब्दी तक विस्तृत रहा है, जिसका साहित्य पालि और संस्कृत दोनों भाषाओं में उपलब्ध है।

(क) प्राथमिक साक्ष्यों का वर्गीकरण:

1. **त्रिपिटक:** इसमें 'विनय पिटक' (आचरण के नियम), 'सुत्त पिटक' (बुद्ध के उपदेश) और 'अभिधम्म पिटक' (दार्शनिक विवेचना) शामिल हैं, जो बौद्ध आचार संहिता के मूल स्रोत हैं।
2. **मिलिन्द पन्ह (मिलिन्द प्रश्न):** राजा मीनाण्डर और आचार्य नागसेन का यह संवाद तत्कालीन व्यावहारिक पाठ्यक्रम और शिक्षण की संवादात्मक विधियों पर गहरा प्रकाश डालता है।
3. **ऐतिहासिक यात्रा वृत्तांत:** नालंदा विश्वविद्यालय में स्वयं अध्ययन करने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग तथा ७वीं शताब्दी के शिक्षा तंत्र का वर्णन करने वाले इत्सिंग के वृत्तांत दरबारी पूर्वाग्रहों से मुक्त होने के कारण अत्यधिक प्रामाणिक हैं।

(ख) पूर्ववर्ती शोधों की समीक्षा:

२०वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में डॉ. ए.एस. अल्टेकर (1944) और डॉ. आर.के. मुखर्जी (1947) जैसे विद्वानों के शोध मुख्य रूप से बौद्ध शिक्षा के संस्थागत, ऐतिहासिक और प्रशासनिक स्वरूप पर केंद्रित थे। इसके पश्चात के शोधों, जैसे श्री गोखले (1951) के 'बुद्धिस्ट एजुकेशन इन इंडिया एंड एब्रॉड' और एम.सी. मिश्र (1982) के जातक कालीन शिक्षा संबंधी कार्यों ने इसके मनोवैज्ञानिक आयामों को छुआ। राधाकृष्णन (1994) और भदंत आनंद कौसल्यायन ने स्पष्ट किया कि बौद्ध 'शिक्षात्रय' का मूल ध्येय केवल सूचनाओं का संचय नहीं, बल्कि व्यक्तित्व का परिष्कार था। वर्तमान शोध इसी दार्शनिक धरातल को आधुनिक प्रशासनिक एवं नीतिगत प्रासंगिकता से जोड़कर ज्ञान की रिक्ति को पूर्ण करता है।

बौद्ध दर्शन के दार्शनिक स्तंभ एवं शैक्षिक निहितार्थ:

शिक्षात्रय: शील, समाधि और प्रज्ञा का अंतर्संबंध

बौद्ध दर्शन का संपूर्ण शैक्षिक ढांचा 'शिक्षात्रय' के तीन स्तंभों पर टिका है, जो आधुनिक मनोविज्ञान के 'होलिस्टिक लर्निंग' (समग्र अधिगम) का पूर्वगामी है:

शील (नैतिक आचरण) → समाधि (चित्त की एकाग्रता) → प्रज्ञा (विवेकपूर्ण ज्ञान)

- **शील:** यह शिक्षात्रय का प्रथम सोपान है, जो विद्यार्थी को मानसिक और वाचिक संयम सिखाता है। गृहस्थों के लिए पंचशील और भिक्षुओं के लिए दशशील के नियम चेतना को शुद्ध करने के माध्यम थे। प्रोफेसर के रूप में मेरा यह मानना है कि चरित्र की नींव के बिना दी गई शिक्षा समाज के लिए घातक होती है।
- **समाधि:** शील की नींव पर ही समाधि का निर्माण होता है, जिसका अर्थ है चित्त की एकाग्रता। यह विद्यार्थी की अवधान क्षमता और स्मृति को प्रखर करती है तथा बाहरी विक्षेपों से बचाती है।
- **प्रज्ञा:** शिक्षात्रय की परिणति प्रज्ञा में होती है। यह सूचनाओं का संग्रह मात्र नहीं, बल्कि यथार्थ का विवेकपूर्ण साक्षात्कार है। समाधि के बिना प्रज्ञा मात्र शुष्क बौद्धिक तर्क बनकर रह जाती है, इसलिए इन तीनों का समन्वय अनिवार्य है।

प्रतीत्यसमुत्पाद और मध्यम मार्ग:

- **प्रतीत्यसमुत्पाद (कारण-कार्य सिद्धांत):** इसका अर्थ है "किसी कारण के होने पर कार्य की उत्पत्ति"। शैक्षिक दृष्टिकोण से यह सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह छात्र में अंधविश्वासों को दूर कर एक वैज्ञानिक, तार्किक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण विकसित करता है, जहाँ वह समस्याओं के मूल कारणों को खोजकर उनका निरोध कर सकता है।

- **मध्यम मार्ग:** भगवान बुद्ध ने विलासिता के अतिरेक और शरीर को कष्ट देने वाली कठोर तपस्या के बीच का मार्ग चुना। शिक्षा के क्षेत्र में यह सिद्धांत संतुलित अनुशासन पर बल देता है, जहाँ न तो अनुशासन इतना कठोर हो कि छात्र का स्वाभाविक विकास रुक जाए, और न ही इतनी स्वतंत्रता हो कि वह मर्यादाविहीन हो जाए।

बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप एवं विस्तार

प्रवेश प्रक्रिया और संस्कार

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में प्रवेश कोई प्रशासनिक औपचारिकता मात्र नहीं थी, बल्कि एक पवित्र आध्यात्मिक परिवर्तन था:

- **पबज्जा (प्रव्रज्या) संस्कार:** इसका शाब्दिक अर्थ है 'बाहर जाना'। यह बालक के पारिवारिक जीवन से शैक्षिक जीवन की ओर प्रस्थान का प्रतीक था। ८ वर्ष की आयु में बालक के केश मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण कराकर गुरु के चरणों में 'शरणत्रयी' का उच्चारण कराया जाता था: *बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि* इसके बाद छात्र 'श्रामणे' कहलाता था।
- **उपसम्पदा संस्कार:** उच्च शिक्षा की समाप्ति (सामान्यतः २० वर्ष की आयु) पर यह संस्कार होता था, जो छात्र को संघ का स्थायी भिक्षु सदस्य बनाता था। यह प्रक्रिया अत्यंत लोकतांत्रिक थी, जिसमें कम से कम १० विद्वान भिक्षुओं की उपस्थिति और बहुमत के आधार पर ही प्रवेश संभव था।

व्यापक एवं संतुलित पाठ्यक्रम: एक विश्लेषणात्मक विवेचन

बौद्ध कालीन शिक्षा का पाठ्यक्रम अपनी दार्शनिक गहनता, व्यापक व्यावहारिक दृष्टिकोण और अद्भुत लचीलेपन के कारण प्राचीन वैश्विक शैक्षणिक इतिहास में अद्वितीय स्थान रखता है। इस पाठ्यक्रम की सबसे बड़ी विशेषता इसका सुव्यवस्थित 'मनोवैज्ञानिक क्रम' था, जहाँ ज्ञान का आरंभ अत्यंत सरल व्यावहारिक तत्वों से होता था और परिणति अत्यंत गूढ़ दार्शनिक चिंतन में होती थी। प्राथमिक स्तर पर बालकों के शिक्षण की शुरुआत 'सिद्धिरस्तु' नामक वर्णमाला के अभ्यास से होती थी, जिसमें ४९ अक्षरों और उनके विभिन्न भाषा-वैज्ञानिकी संयोजनों का शिक्षण दिया जाता था। यह इस ऐतिहासिक तथ्य को रेखांकित करता है कि बौद्ध आचार्यों ने प्राथमिक स्तर पर ही लेखन की शुद्धता, उच्चारण के विज्ञान और भाषाई सुदृढ़ता को शिक्षा के अनिवार्य अंग के रूप में स्थापित कर दिया था। प्राथमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य जनसाधारण को साक्षर बनाना और उनमें दैनिक जीवन के प्रति व्यावहारिक समझ पैदा करना था।

उच्च शिक्षा के स्तर पर पहुँचते ही पाठ्यक्रम दो मुख्य धाराओं में विभाजित हो जाता था धार्मिक (पारलौकिक) और लौकिक (व्यावहारिक)। बौद्ध विहारों और मठों में रहने वाले नियमित भिक्षुओं के लिए जहाँ त्रिपिटकों (विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक) का गहन अध्ययन, पालि भाषा का व्याकरण और बौद्ध दर्शन के विभिन्न संप्रदायों की सूक्ष्म व्याख्याएँ अनिवार्य थीं; वहीं दूसरी ओर जनसाधारण और बाह्य छात्रों के लिए पाठ्यक्रम में लौकिक विषयों को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। इस लौकिक पाठ्यक्रम के अंतर्गत संस्कृत भाषा, उन्नत व्याकरण, काव्य शास्त्र, ज्योतिष, शब्द-विद्या और चित्रकला जैसे विषयों का समावेश था। यह दोहरी पाठ्यक्रम संरचना यह सुनिश्चित करती थी कि शिक्षा केवल आध्यात्मिक निर्वाण या वैराग्य तक ही सीमित न रहे, बल्कि समाज को सुशिक्षित, प्रबुद्ध नागरिक, कुशल नीतिशास्त्री और प्रज्ञावान मार्गदर्शक भी प्राप्त हो सकें।

बौद्ध पाठ्यक्रम का सबसे आधुनिक और प्रगतिशील पक्ष इसमें 'व्यावसायिक, शिल्पगत और तकनीकी शिक्षा' का व्यापक समावेश था। तक्षशिला और नालंदा जैसे वैश्विक ख्याति प्राप्त विश्वविद्यालयों में १८ प्रकार के शिल्पों का व्यावहारिक शिक्षण दिया जाता था, जिनमें आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान), धनुर्वेद (सैन्य विज्ञान और युद्ध कला), कृषि, वाणिज्य, धातु-कर्म, मूर्तिकला और स्थापत्य कला प्रमुख थे। विशेषकर चिकित्सा शास्त्र (आयुर्वेद) का पाठ्यक्रम इतना उन्नत और कठोर था कि सात वर्षों के सघन सैद्धांतिक और प्रयोगात्मक अध्ययन तथा कठिन परीक्षाओं के पश्चात ही छात्र को स्नातक की उपाधि मिलती थी, जिसका जीवंत विवरण सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के चिकित्सक जीवक के संदर्भों में मिलता है। पाठ्यक्रम का यह व्यावहारिक पक्ष छात्र को केवल सैद्धांतिक ज्ञान का बोझ नहीं देता था, बल्कि उसे पूर्णतः आत्मनिर्भर बनाकर तत्कालीन समाज की आर्थिक संरचना में सक्रिय योगदान देने के योग्य बनाता था।

इसके अतिरिक्त, बौद्ध पाठ्यक्रम संकीर्णतावादी सोच से सर्वथा मुक्त था, जिसका प्रमाण यहाँ की 'तुलनात्मक दार्शनिक अध्ययन' की परंपरा है। बौद्ध विहारों में न केवल बौद्ध मत की शिक्षा दी जाती थी, बल्कि सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक जैसे अन्य सनातन (ब्राह्मण) दर्शनों, वेदों और उपनिषदों का भी सूक्ष्म एवं आलोचनात्मक अध्ययन कराया जाता था। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रों में वैचारिक उदारता, सहिष्णुता और शास्त्रार्थ की तार्किक क्षमता विकसित करना था ताकि वे अपने वैचारिक प्रतिद्वंद्वियों के साथ अकादमिक और तार्किक संवाद स्थापित कर सकें। पाठ्यक्रम की यही 'विविधता' और 'समग्रता' प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों को 'विश्वगुरु' के रूप में स्थापित करने का मुख्य कारण बनी।

निष्कर्षतः, बौद्ध कालीन पाठ्यक्रम बुद्ध के 'मध्यमा प्रतिपदा' यानी मध्यम मार्ग के सिद्धांत से पूरी तरह अनुप्राणित था। इसमें जहाँ एक ओर आंतरिक शांति के लिए कठोर मानसिक अनुशासन, ध्यान (विपश्यना) और नैतिक आचार संहिता (शील) का आग्रह था; वहीं दूसरी ओर ललित कलाओं, लौकिक साहित्यों, व्यावहारिक शिल्पों और विज्ञान की उपेक्षा नहीं की गई थी। पाठ्यक्रम में मनोरंजन और सांस्कृतिक चेतना का यह संतुलन इसे शुष्क या नीरस होने से बचाता था। इस प्रकार, बौद्ध कालीन पाठ्यक्रम ने अध्यात्म और भौतिकता, प्राचीन सांस्कृतिक विरासत और आधुनिक व्यावहारिक वैज्ञानिकता के मध्य एक ऐसा अद्भुत सेतु निर्मित किया, जो आज की समकालीन शिक्षा प्रणाली के खंडित, अत्यधिक शुष्क और रोजगार-उन्मुख पाठ्यक्रम के दोषों को दूर करने के लिए एक आदर्श और समग्र मॉडल प्रस्तुत करता है।

शिक्षण विधियाँ एवं गुरु-शिष्य संबंध:

शिक्षण विधियाँ: मुद्रण के अभाव में मौखिक, पद्य और कंठस्थीकरण विधि प्रचलित थी। गूढ़ दार्शनिक विषयों को समझाने के लिए आचार्यों द्वारा व्याख्यान एवं कथा विधि का आश्रय लिया जाता था। तार्किकता के विकास के लिए खंडन-मंडन पर आधारित 'वाद-विवाद एवं शास्त्रार्थ पद्धति' का व्यापक प्रयोग होता था।

गुरु-शिष्य संबंध: महावग्ग के अनुसार, आचार्य अपने शिष्य को पुत्र के समान स्नेह प्रदान करता था और शिष्य गुरु को पिता तुल्य मानता था, जिसे "उपशून्य" संविहारिक की अवधारणा कहा गया है। मिलिन्दपन्हों में आचार्य के लिए २५ विशेष गुणों का होना अनिवार्य बताया गया है। अनुशासन बाहरी भय पर आधारित न होकर 'आत्म-संयम' पर आधारित था, और यदि आचार्य स्वयं नैतिक आचरण से च्युत होता, तो शिष्य उसकी आज्ञा पालन से मुक्त हो जाता था।

स्त्री शिक्षा, सह-शिक्षा एवं सामाजिक प्रभाव:

उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की शैक्षिक स्थिति में आ रहे हास को बौद्ध काल ने अपनी वैचारिक क्रांति से चुनौती दी।

स्त्री शिक्षा का विकास: प्रारंभ में बुद्ध स्त्रियों के संघ प्रवेश के प्रति आशंकित थे, परंतु अपने प्रिय शिष्य आनंद के आग्रह और महाप्रजापति गौटमी की भक्ति को देखकर उन्होंने स्त्रियों को भिक्षुणी संघ में प्रवेश की अनुमति दी। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा और दर्शन के द्वार खुले। 'थेरीगाथा' जैसे ग्रंथ उन विदुषी भिक्षुणियों की काव्यमयी दार्शनिक अनुभूतियों के साक्ष्य हैं जिन्होंने तत्कालीन आचार्यों को भी चकित कर दिया था। विशाखा और अंबपाली जैसी स्त्रियों ने शैक्षिक केंद्रों को संरक्षण देकर सामाजिक नेतृत्व की मिसाल पेश की।

सह-शिक्षा का अस्तित्व: यद्यपि प्राचीन ग्रंथों में 'सह-शिक्षा' शब्द का आधुनिक पारिभाषिक प्रयोग नहीं मिलता, किंतु बालिकाओं के लिए पृथक विश्वविद्यालयों के अभाव, समाज में पर्दा प्रथा (अवगुंठन) की अनुपस्थिति और उच्च शिक्षा के लिए अनिवार्य सामूहिक शास्त्रार्थ की प्रकृति यह प्रमाणित करती है कि नालंदा और तक्षशिला जैसे केंद्रों में सह-शिक्षा का व्यावहारिक अस्तित्व विद्यमान था।

सामाजिक लोकतांत्रिकरण: बौद्ध शिक्षा ने ज्ञान पर कुछ विशिष्ट उच्च वर्गों के एकाधिकार को समाप्त कर समाज के अंतिम व्यक्ति (स्त्री और शूद्रों सहित) के लिए द्वार खोले। जन्म-आधारित श्रेष्ठता के अहंकार को तोड़कर 'कर्म' और 'शील' को व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का वास्तविक आधार बनाया गया।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में बौद्ध शिक्षा की प्रासंगिकता:

आज की वैश्विक शिक्षा प्रणाली जब मानसिक स्वास्थ्य के संकट, बेरोजगारी और नैतिक पतन से जूझ रही है, तब बौद्ध दर्शन के व्यावहारिक सिद्धांत एक मार्गदर्शिका सिद्ध हो सकते हैं:

तनाव प्रबंधन और मानसिक स्वास्थ्य: आधुनिक छात्र अत्यधिक प्रतिस्पर्धी माहौल के कारण अवसाद और एकाग्रता की कमी का सामना कर रहे हैं। बौद्ध शिक्षा में प्रतिपादित चित्त की एकाग्रता और 'समाधि' के अंगों को आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान 'तनाव प्रबंधन' का एक अचूक उपकरण मानता है। कक्षा-कक्षीय प्रक्रिया में कुछ क्षणों का ध्यान छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि को संतुलित कर सकता है।

समान स्कूल प्रणाली और समावेशी शिक्षा: बौद्ध विहारों का वह लोकतांत्रिक स्वरूप, जहाँ एक राजकुमार और एक निर्धन बालक एक ही अनुशासन में रहकर भिक्षाटन करते और शिक्षा पाते थे, आज की 'समान स्कूल प्रणाली' और सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रेरणा स्रोत है।

पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास (SDGs): बौद्ध दर्शन की 'अपरिग्रह' और 'मितव्ययिता' की शिक्षा आज के उपभोक्तावादी समाज के लिए अनिवार्य है। बुद्ध के अनुसार, मनुष्य की असीमित तृष्णा ही प्राकृतिक विनाश का मूल कारण है। शिक्षा के माध्यम से प्रकृति के साथ 'सह-अस्तित्व' का यह बौद्ध मार्ग जलवायु परिवर्तन के संकट को हल करने में सहायक हो सकता है।

निष्कर्ष एवं शैक्षिक नीतिगत सुझाव:

निष्कर्ष:

प्राचीन बौद्ध शिक्षा प्रणाली केवल धार्मिक प्रचार का माध्यम नहीं थी, बल्कि तर्क, नैतिकता, स्वावलंबन और मानवीय संवेदनाओं पर आधारित एक पूर्णतः वैज्ञानिक और लोकतांत्रिक व्यवस्था थी। अतीत के इन गौरवमयी शैक्षिक निहितार्थों को समकालीन ढांचे में एकीकृत करके ही हम एक मूल्य-परक, प्रबुद्ध और आत्मनिर्भर समाज का निर्माण कर सकते हैं जो तकनीकी रूप से उन्नत होने के साथ-साथ नैतिक रूप से भी सुदृढ़ हो।

प्रमुख सुझाव:

आधुनिक शैक्षिक ढांचे में सुधार हेतु निम्नलिखित ठोस सुझाव प्रस्तुत करता हूँ:

चरित्र और शील आधारित ग्रेडिंग प्रणाली: विद्यालयों में मूल्यांकन का आधार केवल किताबी ज्ञान या अंकों तक सीमित न रहकर, छात्र के व्यावहारिक व्यवहार, परोपकार, नैतिक आचरण और अनुशासन को भी समान अधिमान (Weightage) दिया जाना चाहिए।

संवाद-केंद्रित लोकतांत्रिक कक्षाएँ: कक्षाओं को पारंपरिक 'व्याख्यान-केंद्रित' विधा से मुक्त कर बौद्ध कालीन 'शास्त्रार्थ और वाद-विवाद' की तर्ज पर संवाद-केंद्रित बनाया जाए, जहाँ विद्यार्थी बिना किसी भय के अपनी जिज्ञासाएँ प्रस्तुत कर सकें।

कौशल और स्वावलंबन का एकीकृत मॉडल: प्राचीन विश्वविद्यालयों के १८ शिल्पों की व्यावहारिक पद्धति से प्रेरणा लेते हुए उच्च शिक्षण संस्थानों में पारंपरिक पाठ्यक्रमों के साथ आधुनिक तकनीकी एवं व्यावसायिक कौशलों का एक 'एकीकृत मॉडल' लागू किया जाए, जिससे स्नातक होने के बाद युवा 'नौकरी चाहने वाले' के बजाय 'रोजगार देने वाले' बन सकें।

शिक्षकों की भूमिका का पुनर्निर्धारण: शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में बौद्ध आचार्यों के 'वात्सल्य' और 'पारस्परिक उत्तरदायित्व' जैसे तत्वों को शामिल किया जाए, ताकि शिक्षक केवल एक 'सूचना प्रदाता' न रहकर एक आध्यात्मिक और नैतिक मार्गदर्शक के रूप में स्थापित हो सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. अल्तेकर, ए० एस०. (1944a). *प्राचीन भारत में शिक्षा*. नंदकिशोर एंड ब्रदर्स.
2. अल्तेकर, ए० एस०. (1944b). *प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति*. मोतीलाल बनारसीदास.
3. अश्वघोष. (1985). *बुद्धचरितम्* (रा० शास्त्री, संपा०). चौखम्बा विद्याभवन.
4. आंबेडकर, बी० आर०. (1957). *बुद्ध और उनका धम्म*. सिद्धार्थ कॉलेज पब्लिकेशन.

5. ईश्वरन, ए० (अनु०). (1985). *धम्मपद*. नीलगिरि प्रेस.
6. कौसल्यायन, भ० आ० (संपा०). (1956). *जातक (खंड 1-6)*. हिंदी साहित्य सम्मेलन.
7. कोशाम्बी, ध०. (1940). *भगवान बुद्ध*. राजकमल प्रकाशन.
8. थॉमस, ई० जे०. (1927). *बुद्ध का जीवन: एक किंवदंती और इतिहास के रूप में*. केगन पॉल.
9. नाकामुरा, एच०. (1987). *भारतीय बौद्ध धर्म: एक सर्वेक्षण और ग्रंथ सूची टिप्पणी के साथ*. मोतीलाल बनारसीदास.
10. भट्टाचार्य, एन० एन०. (2000). *बौद्ध शिक्षा*. मुंशीराम मनोहरलाल प्रकाशन.
11. राइस डेविड्स, टी० डब्ल्यू०. (1896). *बौद्ध धर्म: इसका इतिहास और साहित्य*. जी. पी. पुटनम्स सन्स.
12. शुक्ला, एस० सी०. (2005). *बौद्ध शिक्षा दर्शन*. प्रकाशन विभाग.
13. त्रिपाठी, एस० डी०. (2003). *भारतीय बौद्ध दर्शन*. भारतीय ज्ञानपीठ.

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, and opinions expressed in this publication are solely those of the author(s). The publisher and editorial team are not responsible for any errors, claims, or consequences arising from the use of the published content.